निराला

निराला की कविता और दलित चेतना

प्रफुल्ल कोलख्यान

दलित चेतना और निराला की कविता पर विचार करने का मतलब है, निराला साहित्य के संघटन में दलित चेतना के अवदान और इसके कारण तत्समय जारी साहित्य के रूप और तत्त्व (कथ्य और वस्तु) तथा निराला साहित्य के रूप और तत्त्व (कथ्य और वस्तु) में संभव हुए मात्रात्मक और गुणात्मक विकास का संधान। वस्तुत: मनुष्य अपनी मानवीय विशिष्टता में जटिलतम प्राणी है। मनुष्य की यह जटिलता उसके मस्तिष्क की संरचना और कार्यप्रणाली से भी सह संयोजित होती है। चेतना अपने-आप में वह मानसिक संकाय है जो अपना निमित्त भी है और उपादान भी। निश्चित रूप से चेतना एक मिश्र उत्पाद भी है और इस अर्थ-संदर्भ में वह एक रसायन-यौगिक स्थिति है। अर्थात चेतना के उत्पादन में विभिन्न अभिकारक तो हुआ करते हैं किंतु उन अभिकारकों को अनन्यत: सहज ही लक्षित किया जाना संभव नहीं हुआ करता है। इसीलिए जब किसी व्यक्ति के क्रिया-कलाप, विचार या चिंतन-प्रक्रिया का विश्लेषणकर उसके निर्मायक तत्त्वों के अभिज्ञान की चेष्टा की जाती है तब हम वस्तुत: अपनी निष्पत्ति में अनुमान तक ही पहुँच सकते हैं, प्रमाण तक नहीं। अधिक-से-अधिक यही कहा जा सकता है कि ऐसा हुआ होगा, लेकिन यह नहीं कह सकते कि ऐसा ही हुआ है। चेतना के आशय को सामने रखे बिना दलित-चेतना पर बात करना ठीक नहीं है। क्षणिक और कई बार अल्पज्ञात प्रसंग के संदर्भों में उत्पन्न तात्कालिक मनोवेग की लगभग तर्कातीत स्थिति भावना कहलाती है, जबकि चिरकालिक और अनिवार्यत: कारण-कार्य पद्धति के बहुव्याप्त प्रसंग के संदर्भों में दीर्घकालिक मनोवेग की तर्काख्यायित स्थिति चेतना कहलाती है। भावना और चेतना को एक-दूसरे से विलगाना बहुत आसान नहीं है, यह मानते हुए भी कहा जा सकता है कि कुछ सीमा तक, भावुक होना अच्छी बात है किंतु चैतन्य होना बड़ी बात है। भावना संवेदित करती है जबकि चेतना अनुप्रेरित। कई बार साहित्य भावना को ही चेतना के स्तर तक ले जाकर अपना प्रभाव सिद्ध करता है किंतु विचार को संस्कार में परिणत या फलित करनेवाला साहित्य, चेतना को भावना की शक्ति से संपन्नकर अधिक काल तक अपने पाठकों को संवेदित और अनुप्रेरित करता है। भावना और चेतना एक दूसरे के विरोधी

न हो कर एक दूसरे के पूरक होते हैं। इन्हें मानवीय मनोवेग के विभिन्न चरणों के संदर्भ में समझा जा सकता है। भावना का संबंध आस्था से होता है और चेतना का संबंध विवेक से। जीवन में आस्था और विवेक दोनो का अपना महत्त्व है। आदर्श स्थिति तो यह होती है जहाँ भावना और विवेक एक दूसरे के पूरक बनते हैं। किंतु जीवन की जटिलता के कारण अक्सर भावना और विवेक एक दूसरे के आमने-सामने हो जाया करते हैं। ऐसी स्थिति में चुनौती होती है दृढ़तापूर्वक विवेक के पक्ष में निर्णय लेने का।

सामंतवादी और पूँजीवादी आर्थिक ढाँचों के श्रम-संबंधों में एक महत्त्वपूर्ण अंतर यह होता है कि सामंतवाद उत्पादन से जुड़े श्रमिक वर्ग की मजदूरी को असंभाषित स्वरूप में रखता है जबकि पूँजीवाद संभाषित स्वरूप में। इसीलिए सामंतवाद में सुपरिभाषित मजदूर वर्ग का अस्तित्व उभर नहीं पाता है, जबकि पूँजीवाद में ऐसा हो जाता है। भारत में साम्राज्यवाद और सामंतवाद की जड़ें बहुत गहरी रही हैं। आज भी भारतीय स्वभाव में सामंतवाद का तत्त्व काफी सक्रिय पाया जाता है। इस सामंती स्वभाव और इसके धर्म-संश्रय के कारण छोटे वर्ग के द्वारा बड़े वर्ग के सामाजिक दलन और आर्थिक शोषण की प्रत्यक्ष-अ-प्रत्यक्ष प्रक्रिया समुदाय, वर्ग और व्यक्ति स्तर पर चलती रहती है। इस प्रयोजन के लिए भारतीय सामंती साम्राज्यवाद ने भय-भेद-साम-दाम-दंड तमाम प्रकार की प्रयुक्तियों का व्यवहार किया और जाने-अनजाने रूप में धर्म, साहित्य, कला एवं संस्कृति के अन्य उपादानों का भी इस्तेमाल करते हुए विकासमान सामाजिक मूल्यों का निर्माण करते रहे। इस्लामिक-सत्ता के भारत आगमन के साथ ही साम्राज्य के स्वरूप में भी अंतर आया और धर्म भी प्रभुवर्ग के पूर्ण और एकल प्रभुत्व से मुक्त होने के लिए अनुकूल वतावरण पाने लगा। अंग्रेजों के आगमन और साम्राज्य पर नियंत्रण से फिर एक बार नई चेतना उत्पन्न हुई जिसका रासायनिक परिपाक हमें भारतेंदुकाल में साफ-साफ मिलता है। चेतना के इसी रासायनिक परिपाक के साथ शुरू होता है हिंदी साहित्य का आधुनिक काल। अंग्रेजों के आगमन ने सामंतवाद के ढाँचों को क्षतिग्रस्त या अप्रासंगिक किये बिना पूँजीवाद के विकास के लिए माहौल उत्पन्न करना शुरू किया। सामंतवाद अपने क्रूरतर रूप में बना हुआ था। सामाज का प्रभुवर्ग अपने अपने आकार में छोटा होते हुए भी महत्त्वपूर्ण था। वह खुद तो पूँजीवाद से जुड़ने लगा किंतु वृहत्तर वर्ग जो सामाजिक कारणों से पिछड़ा हुआ था, सामंतवादी व्यवस्था में जकड़ा रहा और अब इसकी जकड़न दुहरी हो गई थी। शासितों द्वारा शासित होने की इस स्थिति का बेहतर और प्रामाणिक चित्रण प्रेमचंद के गोदान में देखने को मिलता है, विशेष कर राय साहब के संदर्भ में। भक्तिकाल की धर्म-चेतना के साथ आधुनिक युग की अर्थ-चेतना के जुड़ाव को यहाँ देखा जा सकता है।

ऐतिहासिकता की इस पृष्ठभूमि में भैतिकवाद के द्वंद्व को समझें तो स्पष्ट होता है कि वे तमाम लोग इस पूरे प्रकरण में दलित होते चले गये जो वृहत्तर समुदाय या वर्ग के होते हुए भी लगातार शोषित रहने के लिए बाध्य थे। इसे भारतीय संदर्भ में जाति गठन के स्वरूप में भी समझा जा सकता है। 'जाति-पाति पूछै नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई' के साथ ही अब 'कमानेवाला खायेगा' की चेतना भी आकार पाने लगी। 'साबार उपरि मानुस सत्य' की चेतना के साथ भारतीय मनीषा उपेक्षितों की पुकार को व्यावहारिक बनाये जाने पर जोर देते हुए स्थापित सत्ता, व्यवस्था और मूल्यबोध के यथास्थितिवादी स्वभाव से संघर्ष करती हुई व्यापक मानवतावाद के सिंहद्वार तक पहुँची। औद्योगिक क्रांति के कारण विश्व में उभरते हुए शक्तिशाली मजदूर वर्ग और महात्मा गाँधी की राजनीति के मानवतावादी पक्ष से भी सर्वहारा और दलित वर्ग में नई चेतना संचार हो रहा था। इस चेतना को रूसी क्रांति की सफलता और सार्थकता के प्रति दृढ़ आस्था से उत्साहजनक आश्वासन मिल रहा था। इस फलक पर बाबा साहब आंबेडकर की वैचारिकताओं, और समाजवादी आकांक्षाओं, और वामपंथी संघटनात्मकताओं की सक्रिय उपस्थिति से भी तत्कालीन यथार्थ को नया आयाम मिल रहा था।

नवउपनिवेशवाद की अवधारण के अनुसार सामाजिक-राजनीतिक चेतना और प्रक्रिया की मुख्य नियंता शक्ति अर्थ-संबंधों

की कार्यकारी नीति से उत्पन्न होती है। स्वभावत: राजनीतिक प्रभुत्व से अधिक महत्त्व आर्थिक प्रभुत्व का होता है। भारतीय आजादी के संघर्ष के समाज-अर्थनैतिक पक्ष की मूल आकांक्षा सामंतवादी ढाँचे को तोड़कर पूँजीवादी व्यवस्था (गाँधीवादी अवधारणा में ग्राम आधारित विकेंद्रित पूँजीवादी व्यवस्था और नेहरूवादी अवधारणा में नगर आधारित संकेंद्रित पूँजीवादी व्यवस्था) कायम करना था। सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक दुरभिसंधियों का सहारा लेते हुए शक्ति-स्रोत से काटकर अलग कर दिये गये एवं विकास की संभावनाओं के मानवोचित अवसरों से वंचित कर दिये गये, शताब्दियों से सामाजिक दलन और आर्थिक शोषण के शिकार बने दलित वर्ग की पीड़ा, भावना और चेतना अपने को नाना रूपों में अभिव्यक्त कर रही थी।

निराला के समय के संदर्भ में चेतना के इस विकास-क्रम को देखने और फिर उनकी कविताई को विश्लेषित करने से उनकी कविता अधिक सटीक ढंग से समझी जा सकती है। जाति या जन्म के आधार पर दलित वर्ग के सदस्य नहीं होते हुए भी उनके कवित्त-विवेक के मानसिक संकाय के निर्माण में दलित चेतना से जुड़ाव और इसके प्रभाव का वृहत्तर योगदान रहा है, यह निष्कर्ष उनकी कविताई के विश्लेषण से सहज ही प्राप्त होता है। निराला और प्रेमचंद आधुनिक हिंदी साहित्य में इसलिए भी अधिक महत्वपूर्ण हैं कि वे आजादी के संघर्ष को पूरे ऐतिहासिक संदर्भ में अधिक समग्रता से समझ रहे थे और उसके भविष्य के संदर्भ को भी पढ़ पा रहे थे। प्रेमचंद को आशंका थी कि मि.जॉन की जगह श्री गोबिंद बिराजने जा रहे हैं। विराजने के इसी अवसर को आजादी बताया जायेगा। तब, जब हिंदी साहित्य आनंदवाद के तीव्रभावाकर्षण से दोलायमान हो रहा था निराला ने जल्दी-जलदी पैर बढ़ाने की पुकार लगायी थी, क्योंकि उन्हें भी आशंका थी कि देर हो सकती है और देर होने से सारा गुड़ गोबर हो जायेगा। देखें, निरालाजी की कविता की पंक्ति:

जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ
आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला
धोबी, पासी, चमार, तेली
खोलेंगे अंधेरे का ताला
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ।

यहाँ जहाँ सेठ जी बैठे थे
बनिये की आँख दिखाते हुए
उसके ऐंठाये, ऐंठे थे
धोखे पर धोखा खाते हुए
बैंक किसानों का खुलवाओ ।।

सारी संपत्ति देश की हो
सारी आपत्ति देश की बने
जनता जातीय वेश की हो
वाद से विवाद यह ठने
काँटा काँटे से कढ़ाओ ।।।

अमीरों की हवेली किसानों की पाठशाला होगी जहाँ वे सभ्यता का पाठ पढ़ेंगे। इस अंधेरे का ताला कोई पंडे-पुरोहित नहीं खोल सकता बल्कि धोबी, पासी, चमार,तेली खोल सकते हैं। ऐसे लोग खोल सकते हैं, सुबह-सुबह जिनके दर्शन को भी पंडे-पुरोहित का बड़ा वर्ग अपशकुन बताता रहा है। निराला कहते हैं कि अब ये बनेंगे सूरज के नये सारथी और लायेंगे नया सबेरा। सारी संपत्ति देश की होगी और सारी आपत्ति भी। निराला को शंका थी कि पैर जल्दी-जल्दी न बढ़े तो अनर्थ हो जायेगा, हुआ भी। देखिये निराला की कविता राजा ने अपनी रखवाली की का कुछ अंश:

राजे ने अपनी रखवाली की
किला बनाकर रहा
बड़ी-बड़ी फौजें रखी।
चापलूस कितने सामंत आये।
मतलब की लकड़ी पकड़े हुए।
कितने ब्राह्मण आये
पोथियों में जनता को बाँधे हुए।
कवियों ने उसकी बहादुरी के गीत गाये
लेखकों ने लेख लिखे
ऐतिहासकारों ने इतिहास के पन्ने भरे
नाट्य कलाकारों ने कितने नाटक रचे।

कैसी विडंबना है कि जिस राजा पर अपनी रखवाली का दायित्व का सौंपकर लोग खुद को सुरक्षित समझ बैठे थे वे अपनी रखवाली करने की कोशिश से ही संतुष्ट था। पोथियों में जनता को बाँधनेवाले ब्राह्मणों से देश तथा जनता की रखवाली करने के बदले अपनी रखवाली करनेवाले राजाओं, पन्ना भरनेवाले इतिहासकारों तथा नाटक रचनेवाले कलाकारों सब की पहचान निराला की कविता करती है। 'चर्खा चला' कविता में निराला साफ-साफ कहते हैं-- वेदों के बाद जाति चार भाग में बँटी, यही यमराज है। जरा झींगुर का बयान देखिये:

चूँकि हम किसान सभा के
भाई जी के मददगार
जमींदार ने गोली चलवाई
पुलिस के हुक्म की तामीली की।
ऐसा यह पेंच है।

झींगुर का डटकर ऐसा बोल सकना निराला की कविता में ही संभव हो सका। दगा की कविता को पढ़ने के बाद कोई सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि विकास को भी साम्राज्यवाद और सामंतवाद जाल की तरह बुनता है और उसका इस्तेमाल जन-आखेट में बड़ी होशियारी से करता है:

किरणों का जाल फैला।
दिशाओं के होंठ रंगे।
दिन में वैश्याओं जैसे रात में

दगा की इस सभ्यता ने दगा की।

पूरी सभ्यता द्वारा दगा किये जाने की शिकायत के विश्लेषण से यह संकेत साफ-साफ उभर कर सामने आ जाता है कि इस पूरी सभ्यता ने किसी और के साथ नहीं बल्कि दलित जनों के साथ दगा की। निराला की कविता में आये एक प्रसंग को देखिये:

चोट खाकर राह चलते
होश के भी होश छूटे
हाथ जो पाथेय थे, ठग --
ठाकुरों ने रात लूटे।

यहाँ ठग और ठाकुर सिर्फ अनुप्रास की पूर्त्ति या वाक के लालित्य के लिए नहीं हैं। वन उपवन के अर्थ-भेद के पार 'वन बेला' कविता के इस प्रसंग को देखा जा सकता है:

फिर लगा सोचने यथा सूत्र - - मैं भी होता
यदि राजपुत्र ....
इतना भी नहीं, लक्षपति का भी यदि कुमार
....
फिर पिता संग जनता की सेवा का व्रत मैं लेता अभंग
करता प्रचार
मंच पर खड़ा हो साम्यवाद इतना उदार ।

इससे भारतीय राजनीति की दिशा, पत्रकारिता की दृष्टि और साम्यवादी तेवर पर पड़नेवाली निराला की पैनी नजर को कोई सहज ही पहचान सकता है। दलित चेतना का व्यंग्यात्मक विस्फोट कुकुरमुत्ता में मिलता है तो मजदूर वर्ग की स्थिति और शक्ति दोनों के अंदर आकार पा रहे नव निर्माण के संकल्प का संकेत तोड़ती पत्थर/ मजदूरनी के प्रति में मिलता है।

राम की शक्ति पूजा में राम की मूल आकांक्षा है कि सीता का उद्धार हो-- जानकी! हाय उद्धार प्रिया का हो न सका। और यह जानकी कौन है? निराला की नजर में सीता धरती की प्यारी लड़की है, राजकुमारी नहीं। चर्खा चला कविता में निराला कहते हैं:

वाल्मीकि ने पहले वेदों की लीक छोड़ी
छंदों में गीत रचे, मंत्रों को छोड़कर,
मानव को मान दिया
धरती की प्यारी लड़की सीता के गान गाये ।

पोथियों में जनता को बाँधनेवालों ने कैद में पड़ी धरती-पुत्री सीता के विह्वल प्रेमी राम की जगह प्रभु राम को स्थापित किया। फिर 'राम की शक्ति पूजा' की तदनुकूल अर्थान्वीति कर ऐसी उलटी समझ कायम और प्रचारित की कि क्या कहने!

नतीजा, कुछ चिंतनशील खरे धर्म निरपेक्ष लोगों को उसमें सांप्रदायिकता का ट्रेप भी नजर आने लगता है।

सामाजिक दलन और आर्थिक शोषण की प्रक्रिया से मानवमुक्ति निराला की काव्य-चेतना का मूलाधार है। निराला की मानवमुक्ति की काव्य-चेतना का मूलाधार दलित-चेतना से निर्मित है। इसी मुक्ति के लिए निराला कभी कहते हैं जागो फिर एक बार; यह नवता के आग्रही निराला के काव्य में निहित नवजागरण की पुकार है, पुनर्जारण से भिन्न और अधिक अर्थपूर्ण। इसी नवजागरण के लिए कभी बादल राग गाते हैं, तो कभी वरदे वीणावादिनी से वर माँगते हैं। वर माँगते हैं कि कलुष-भेद तम हरो और इस दगा करनेवाली सभ्यता के सारे पुराने ढाँचों को नयेपन से विस्थापित कर दो, तो कभी नवीन पुरूषोत्तम (मार्यादा पुरूषोत्तम की नहीं) के विजय का आश्वासन शक्ति से माँगते हैं। निराला साहित्य के प्राण-पुरूष की मुख्य चेतना को वस्तुत: दलित चेतना के परिप्रेक्ष्य से ही समझा जा सकता है।

दलित चेतना के वास्तविक संदर्भ को ग्रहण किये बिना निराला साहित्य का वास्तविक निर्वचन असंभवप्राय है। दलित चेतना अभी शक्ति सँजोने में दत्त-चित्त है। चित्त के थिर होते ही कलुष-भेद का तम दूर होगा और दगा करनेवाली सभ्यता के पार निराला साहित्य के काव्य-संदर्भ का नया क्षितिज प्रकट होगा। नये गगन पर नया सूरज जब चमकेगा तब नये सिरे से निराला को समझना भी संभव होगा।